प्रवर्तक-श्रीकांतिविजय-जैन-इतिहासमाला-पंचमपुष्प.

द्रौपदीस्वयंवरम्।



संपादक—

मुनि जिनविजय।

र्तक-श्रीकांतिविजय-जैन-इतिहासमाला-पंचमपुष्प.

द्रौपदीस्वयंवरम्।

संपादक—

मुनि जिनविजय।

-चतुरविजयोपदिष्ट-वडोदरावास्तव्य-झवेरी-धर्मचन्द्र-पुत्र
र्मचन्द्रेण स्वभार्याहीराकुंवरपुण्यार्थं प्रदत्तद्रव्यसाहाय्येन

प्रकाशयित्री

भावनगरस्था श्रीजैन-आत्मानन्दसभा.

वेतनं २ आनकद्वयम्।

-वल्लभदास त्रिभुवनदास गांधी सेक्रेटरी श्री जैन आत्मानन्द सभा.
णिभाई मथुरभाई गुप्त धी आर्य सुधारक प्रेस रावपुरा-वडोदरा.

ता. २५-११-१८.

प्रस्तावना ।

इस नाटक की हस्त–लिखित प्रति हमें, नडियाद (गुजरात) निवासी श्रीमान् विद्वान् श्रीतनसुखराम मनसुखराम त्रिपाठी ी. ए. के पास से, साक्षर श्रावक श्रीयुत चिमनलाल डाह्याभाई ल एम. ए. (बडोदा के राजकीय पुस्तकालय के एक अध्यक्ष) प्राप्त हुई थी। प्रति यद्यपि तीन–चार सौ वर्ष जितनी लिखि हुई होंगी (लिखने का समय नहीं लिखा) परंतु ी अशुद्ध। कहीं कहीं कुछ पाठ भी छूटा हुआ था–जैसा वें ९ वें पृष्ट पर से विदित होता है। दूसरी प्रति की के लिये कुछ प्रयत्न किया गया परंतु सफलता नहीं मिली। एक मात्र उसी प्रति के आधार पर, यथामति संशोधन कर मुद्रित किया गया है। नाटक–गत वस्तु नाम से ही ज्ञात है। कृति साधारणतया अच्छी और रचना प्रासादिक है।

इस के कर्ता का नाम है महाकवि **विजयपाल**। गुजरात के क्य–नृपति अभिनव **सिद्धराज** बिरुद धारक महाराज **भीमदेव** ा आज्ञानुसार, त्रिपुरुष देव के सामने, वसन्तोत्सव के समय,

---

* यह **भीमदेव** दूसरा **भीमदेव** कहा जाता है। सर्व साधारण में ह 'भोला–भीम' के मुग्धतासूचक नाम से प्रख्यात है। यह, दिल्ली–पति ीराज चाहमान का समकालीन और उस का पूरा प्रतिपक्षी था। विक्रम–संवत् १२३५ से १२९८ (इ. स. ११०९–१२४२) तक ... था।

यह द्वि–अंकी नाटक खेला गया था और इस के अभिनय से गुर्जर राजधानी **अणहिलपुर** की प्रजा प्रमुदित हुई थी। इतनी बात, इसी नाटक के प्रारंभ में जो सूत्रधार का कथन है उसी से ज्ञात होती है।

कवि की तरफ दृष्टि करने से यह कृति बडे महत्व मालूम देती है। क्यों कि इस के सहारे से हमें गुर्वी **गुजरात** एक कमला–कान्त कवि–कुल का कुछ पता लगता है। अ ऐतिहासिक उल्लेखों–साधनों से, जिन का जिक्र आगे पर जायगा, मालूम होता है, कि कवि का कुल बहुत प्रतिष्ठित सारस्वत–भक्त था। राजकीय दृष्टि से सिवा भी, कवि के का गुर्जर–नरेशों के साथ खास विशेष प्रकार का सम्बन्ध थ **विजयपाल** तथा उस के पिता-प्रपितादि 'राज–कवि' थे कुल जाति से **प्राग्वाट** (पोरवाड) वैश्य था और धर्म इ **श्वेताम्बर**–जैन था। **अणहिलपुर** में, इस कुल की ओर से जैन मंदिर और जैन साधुओं के ठहर ने के लिये ' व (जैन उपाश्रय) आदि बने हुए थे। इन के उपाश्रय में बडे बडे जैन विद्वान् मुनि आ आ कर निवास करते थे। ग्रन्थों के अन्त में, उन के, इन के उपाश्रय में बने जाने स्मरणीय उल्लेख भी किया गया हमारे देखने में आया है। से जाना जाता है कि यह कुल श्रीमान्, विद्वान्, राजमान्य जनसम्मान्य था।

विजयपाल का नाम, इस नाटक के सिवा अन्यत्र कहीं हमारे देखने में नहीं आया। कोई कृति भी दूसरी अभी तक ज्ञात नहीं हुई। परंतु यह अपने आप को, इस प्रबन्ध में, 'महाकवि' के उपनाम से सूचित करता है इस लिये इस ने और भी कोई रचना अवश्य की होगी ही। परंतु, या तो सर्वनाशी काल ने उस का कवल कर लिया होगा, या कहीं किसी अन्धकारपूर्ण पूराणे घर के एक कोने में टूटे-फटे बस्ते में बन्धी हुई सड-गल रही होंगी। अस्तु।

प्रसङ्ग वश, इस कीर्तिशाली कुल के विषय में हमें जो कुछ ज्ञात हुआ है वह लिख देते हैं।

विजयपाल के पिता का नाम, जैसा कि स्वयं उसने इस प्रबन्ध में उल्लिखित किया है, **सिद्धपाल** था। वह भी 'महाकवि' था। इस की स्वतंत्र कृति अभी तक हमें कोई श्रुत या ज्ञात हुई नहीं। सोमप्रभसूरि नाम के एक बहुत अच्छे जैन विद्वान् हो गये हैं। **शतार्थी**काव्य, **सूक्तमुक्तावली, सुमतिनाथचरित्र, कुमारपालप्रतिबोध** आदि कई संस्कृत-प्राकृत ग्रंथ उन के लिखे हुए मिलते हैं। इन में से पिछले दो ग्रंथों की अन्त की प्रशस्तियों में **सिद्धपाल** का उल्लेख किया हुआ है। ये ग्रन्थ **सिद्धपाल** की वसति (उपाश्रय) में रह कर उन्हों ने रचे थे, ऐसा प्रसंग वर्णित है। उदाहरण के लिये **सुमतिनाथचरित्र** के प्रशस्ति पद्य लीजिए—

* सूनुस्तस्य कुमारपालनृपतिप्रीतेः पदं धीमता-
मुत्तंसः कविचक्रमस्तकमणिः श्रीसिद्धपालोऽभवत् ।
यं व्यालोक्य परोपकारकरुणासौजन्यसत्यक्षमा-
दाक्षिण्यैः कलितं कलौ कृतयुगारम्भो जनैर्मन्यते ॥
तस्य पौषधशालायां पुरेऽणहिलपाटके ।
§ निष्प्रत्यूहमिदं प्रोक्तं.................... ॥

तात्पर्य यह है कि, **सिद्धपाल** कवियों के समूह में मुकुट समान था । **कुमारपाल** राजा का बडा प्रीतिपात्र था; और परोपकार, करुणा, सौजन्य, सत्य और क्षमा आदि श्रेष्ठजनोचित गुणों से बिभूषित था । उसी **सिद्धपाल** की **पौषधशाला** (उपाश्रय–जैन–वसति) में ठहर कर यह ग्रन्थ बनाया गया, इत्यादि ।

‡ **कुमारपालप्रतिबोध** नामक ग्रन्थ के अन्त में भी ऐसा ही एक पद्य दिया हुआ है—

---

* इस के पहले के पद्य में, **सिद्धपाल** के पिता का उल्लेख है, जो आगे लिखा जायगा ।

§ हमारे पास की प्रति में इस पद्य का चतुर्थ चरण त्रुटित है ।

‡ इस ग्रन्थ में, **हेमचन्द्राचार्य**ने **कुमारपाल** को जैन धर्म प्रतिपादि सिद्धान्तों का, समय समय पर जिन आख्यानों द्वारा बोध दिया था, उन का वर्णन है । ग्रन्थ बहुत बडा है और प्रायः प्राकृत भाषामय है । ' गायकवाडस् ओरिएन्टल सीरीज ' नामक **बडोदा** गवर्नमेन्ट की ओर से प्रकट होने वाली पुस्तकमाला के लिये यह ग्रन्थ हमारी ओर से तैयार किया जा रहा है ।

पुत्रस्तस्य कुमारपालनृपतिप्रीतेः पदं धीमता-
मुत्तंसः कविचक्रमस्तकमणिः श्रीसिद्धपालोऽभवत् ।
कृतं तद्वसताविदं किमपि यच्चायुक्तमुक्तं मया
तद् युष्माभिरिहोच्यतामिति बुधा! वः प्राञ्जलिः प्रार्थये॥

इस ग्रन्थ में, अन्दर भी दो चार जगह सिद्धपाल का उल्लेख किया हुआ है और कुछ उस के पद्य भी उद्धृत किये गये हैं। कुमारपाल, एक दफह गिरनारतीर्थ की यात्रा करने के लिये बहुत बडा संघ ले कर गया था। साथ में हेमचन्द्राचार्य भी थे। उस समय राजा की अवस्था वृद्ध थी और पहाड की चढाई बडी सख्त थी; इस लिये कुमारपाल पर्वत के ऊपर नहीं चढ सका और वहां के जैन–मंदिरों की यात्रा न कर सका। राजा को इस का बडा खेद हुआ। जब वह यात्रा से लौट कर वापस राजधानी पाटण में आया तब उसने अपने दरबार में यह प्रस्ताव किया कि,* गिरनार ऊपर जाने के लिये सुगम ऐसा मार्ग बनवाने के लिये कोई समर्थ है? तब सिद्धपाल ने एक पद्य द्वारा प्रसंशा करते हुए सेनापति आम्र का नाम प्रकट किया। पद्य यह है—

प्रष्ठा वाचि प्रतिष्ठा जिनगुरुचरणाम्भोजभक्तिर्गरिष्ठा
श्रेष्ठाऽनुष्ठाननिष्ठा विषयसुखरसास्वादसक्तिस्तवनिष्ठा।
बंहिष्ठा त्यागलीला स्वमतपरमतालोचने यस्य काष्ठा
धीमानाम्रः स पद्यां रचयितुमचिरादुज्जयन्ते नदीष्णः॥

* जंपइ सहा–निसन्नो सुगमं पज्जं गिरिम्मि उज्जिंते।
को काराविउं सक्को ?, तो भणिओ सिद्धवालेण ॥

इसी तरह एक और जगह भी जिक्र है । हेमचन्द्राचार्य से उचितार्थी को दिये जाने वाले अन्न–वस्त्रादि के दान का माहात्म्य सुन कर कुमारपाल राजा ने राज्य की ओर से एक बडा भारी सत्रागार (दानशाला) खोला और उस का अधिष्ठायक श्रीमाल-कुल–भूषण **नेमिनाग** के पुत्र **अभयकुमार** शेठ को नियत किया। यह शेठ बहुत धर्मिष्ठ, परोपकारी, दयाशील, चतुर और सरल हृदयी था । ऐसे योग्य पुरुष की योग्य कार्य ऊपर नियुक्ति देख कर **सिद्धपाल** का हृदय बडा आनन्दित हुआ और नृपति को इस उचितकार्य–कारिता के लिये धन्यवाद दिया । साथ में उस ने अभयकुमार शेठ की प्रशंसा भी इन दो पद्यों द्वारा की*—

देव-गुरु-पूयण-परो परोवयारुज्जओ दया-पवरो।
दक्खो दक्खिन्न-निही सच्चो सरलासओ एसो ॥

क्षिप्त्वा तोयनिधिस्तले मणिगणं रत्नोत्करं रोहणो
रेण्वावृत्य सुवर्णमात्मनि दृढं बद्ध्वा सुवर्णाचलः ।
क्ष्मामध्ये च धनं निधाय धनदो बिभ्यत्परेभ्यः स्थितः
किं स्यात्तैः कृपणैः समोऽयमखिलार्थिभ्यः स्वमर्थं ददत् ॥

---

* तत्थ सिरिमाल–कुल–नह–निसि–नाहो नेमिणाग–अंगरुहो ।
अभयकुमारो सेट्ठी कओ अहिट्ठायगो रन्ना ॥
इत्थंतरम्मि कवि–चक्कवट्टि–सिरिवाल–रोहण–भवेण ।
बुह–यण–चूडामणिणा पयंपियं सिद्धवालेण ॥

इन पद्यों के अवलोकन से **सिद्धपाल** की कवित्वशक्ति का भी मर्मज्ञ पाठकों को खयाल आ सकेगा। इस ग्रन्थ से ऐसा भी ज्ञात होता है कि **कुमारपाल** कभी कभी **सिद्धपाल** से शान्ति और निवृत्तिजनक आख्यान भी सुने करता था। ऐसा एक संपूर्ण आख्यान इस ग्रन्थ में दिया हुआ हैं और उस के प्रारंभ में ऐसा उल्लेख किया हुआ है:—

कइयावि निव-नियुत्तो कहइ कहं सिद्धपाल-कई।

(कदापि नृपनियुक्तः कथयति कथां सिद्धपालकविः।)

इन उल्लेखों से जाना जाता है कि, **सिद्धपाल** अच्छा कवि, उच्च दर्जेका गृहस्थ और **कुमारपाल** राजा का विशेष प्रीतिपात्र था। **सोमप्रभाचार्यने** अपने ग्रंथ (**कुमारपालप्रतिबोध**) की समाप्ति वि. सं. १२४१ में की और तब तक यह कवि जीवित था। इस के अतिरिक्त अधिकवृतान्त उपलब्ध नहीं और ऊपर दिये गये सरीखे प्रकीर्ण पद्यों के सिवा कोई स्वतंत्र कृति भी प्राप्त नहीं।

सिद्धपाल के पिता का नाम **श्रीपाल** था। यह सचमुच ही 'महाकवि' था। 'कविराज' या 'कविचक्रवर्ती' इस का बिरुद था। **प्रभावकचरित्र, प्रबन्धचिन्तामणि, चतुर्विंशतिप्रबन्ध, मुद्रितकुमुदचन्द्रप्रकरण,** और **कुमारपालप्रबन्धादि** अनेक ग्रन्थो में इस का वर्णन और नामोल्लेख मिलता है। गुजरात के महामात्य **वस्तुपाल**, राज पुरोहित **सोमेश्वर, ठक्कुर अरिसिंह** आदि

जो उत्तम गृहस्थ कवि हो गये हैं उन सब में यह उच्चस्थानाधिष्ठित था। गूर्जरेश्वर **सिद्धराजजयसिंह** का यह 'बालमित्र *' था और राजा हमेशां इसे 'भ्राता' के सम्बोधन से बुलाये करता था। इस की लोकोत्तर कवित्वशक्ति से प्रसन्न हो कर नृपति ने इसे 'कविराज' या 'कविचक्रवर्ती' के महत्त्वशाली उपपद से सम्मानित किया था। उपर्युक्त **सोमप्रभाचार्य** ने इस के यश का वर्णन, **सुमतिनाथचरित्र** और **कुमारपालप्रतिबोध** की अन्तकी प्रशस्तियो में, बहुत ही संक्षेप में परन्तु बडे गम्भीर शब्दों में, एक पद्य द्वारा, इस प्रकार किया है—

प्राग्वाटान्वयसागरेन्दुरसमप्रज्ञः कृतज्ञः क्षमी,
वाग्मी सूक्तिसुधानिधानमजनि श्रीपालनामा पुमान्।
यं लोकोत्तरकाव्यरञ्जितमतिः साहित्यविद्यारतिः
श्रीसिद्धाधिपतिः'कवीन्द्र'इति च'भ्राते'ति च व्याहरत्॥

यह, **अणहिलपुर** के तत्कालीन महान् और प्रतापवान् जैन **श्वेताम्बर** संघ का एक प्रमुख नेता था। **स्याद्वादरत्नाकर** जैसे विशाल और प्रभावशाली तर्क ग्रन्थों के प्रणेता प्रखरवादी **देवसूरि** और विश्वविश्रुत आचार्य **हेमचन्द्र** का यह अनन्य अनुरागी था। वि. सं. ११८१ की वैशाखी पूर्णिमा के दिन **सिद्धराज जयसिंह** की अध्यक्षता में, जैन धर्म की **श्वेताम्बर** और **दिगम्बर** नाम की

---

* देखो, **मुद्रितकुमुदचन्द्र**-प्रकरणम्, पृ. ३९ पर का–'सिधभूपालबालमित्रम्' वाला विशेषण।

दोनों मुख्य शाखाओं में, परस्पर, एक चिरस्मरणीय और विशेष परिणाम जनक प्रचण्ड विवाद हुआ था। इस विवाद में कर्णाटकीय दिगम्बराचार्य कुमुदचन्द्र वादी थे और गूर्जरीय श्वेताम्बरसूरि देवाचार्य प्रतिवादी थे। कविराज श्रीपाल ने इस वाद में प्रमुख भाग लिया था। देवसूरि के पक्ष का यह प्रतापी समर्थक था। कवि यशश्चन्द्र ने इस विवाद के वर्णन–स्वरूप में ' मुद्रित-कुमुदचन्द्र '+ नामक एक नाटक लिखा है जिस में इस का विस्तृत वृत्तान्त है। प्रभाचन्द्र–रचित ' प्रभावक–चरित ' *के देवसूरि नामक प्रबन्ध में भी यह समग्र कथन ग्रथित है।

सरस्वती और लक्ष्मी जैसी दोनों परस्पर अत्यन्त असहिष्णु देवीओं की इस कविराज ऊपर पूर्ण कृपा होने पर भी, दौर्भाग्य से प्रकृति–देवी की इस पर अनुचित अकृपा थी। उस ने अपनी अनुदारता के उपलक्ष्य में इस आदर्श आत्मा के अधिष्ठान के अनुपम अलंकार–स्वरूप जो आक्षि–रत्न थे उन का अपहार कर, इस सचराचर जगत् को ' द्रव्यरूप ' से ' सत् ' मानने वाले परमार्हत कवि चक्रवर्ती को भी, विज्ञानवादी बौद्ध की तरह, सर्वत्र ' शून्यता ' का अनुभव कराने के लिये विचालित किया था।

+ यह नाटक कब बना इस का निर्णीत उल्लेख नहीं मिलता, परंतु अनुमान होता है कि, उक्त विवाद के थोडे ही वर्षों बाद इस की रचना हुई होनी चाहिए। प्रभावक चरितकार ने इस विषय का हाल इसी नाटक ऊपर से लिया है यह उस चरित के देखने से मालूम हो जायगा।

* इस की रचना वि. सं. १३३४ में पूर्ण हुई है।

ब्रह्मानन्द समान दिव्यरसास्वादप्रद ऐसे काव्यानन्द में परम निमग्न होने वाले इस आशापूर्ण कवि-हृदय को भी, विधि की दुर्विलासिता ने संसार की क्षणभंगुरता का खेदजनक विचार विकल्प करा कर ' **सर्वं क्षणिकं** ' मानने वाले सुगत-सिद्धान्ती की समान नैराश्य-भावना का भावुक बनाया था। सृष्टि के दिव्य विभूति-पूर्ण जिन सौन्दर्यशाली पदार्थों का असंख्य वार अवलोकन करने पर भी, जिसके अन्तःकरण ऊपर किंचित् भी प्रभाव नहीं पडता और उन के अपूर्व रहस्य का अल्पमात्र भी अवभासन नहीं होता वैसे सर्वथा जडबुद्धि मनुष्य को भी अपने चर्मचक्षु के चले जाने पर दारुण दुःख हुए करता है, तो फिर, प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में जिस की दृष्टी दिव्य-दृश्यों को ही देखती रहती है, जिन दृश्यों को देख कर जिस के ईश्वरीय हृदय में स्वर्गीय भावों का समुद्र उमड पडता है और जिस समुद्र का एक एक तरंग भी काव्यात्मक मूर्त स्वरूप धारण कर, असीम प्रदेश को रसपरिप्लुत करता है और अगणित काल तक असंख्य सहृदय मनुष्यों को अनिवार्य रसपान कराता रहता है, उस अपार काव्य-संसार के कवि-प्रजापति * की अमोघ शक्ति-स्वरूप बाह्यदृष्टि के नष्ट हो जाने पर उस के निसर्ग-प्रेमी आत्मा को कैसा विषाद होता होगा, उस की कल्पना कौन कर सकता है। यद्यपि, कविराज ' चर्मचक्षु ' न होने पर भी ' प्रज्ञा-

---

* अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः ।

—ध्वन्यालोक, तृतीयोद्योत ।

चक्षु ' था, इस लिये वह ' कर्मपरिणति ' के कठोर नियमों का ज्ञाता होने से, उदित हुए सुखदुःखों का समभाव से 'वेदन' कर लेता था, तौ भी, मनुष्य–स्वभाव–सुलभ विषाद कभी कभी योग्य प्रसंग पर थोडा बहुत आही जाता था ! इस का एक उदाहरण हमें **मुद्रितकुमुदचन्द्र** में से मिलता है।

ऊपर हमने जिस विवाद का उल्लेख किया है, उस की हील चाल जब **अणहिल्लपुर** में हो रही थी तब एक रात्रि को **श्रीपाल** अपने आचार्य **देवसूरि** को मिलने के लिये और नृपति **सिद्धराज** का कुछ सन्देश पहुंचाने के लिये गया। कविराज को आते देख **देवसूरि** बोले—

अये कथं सिद्धभूपालबालमित्रं, सूत्रं सुकवितायाः, कविराजबिरुदकमलनालं, श्रीपालमालोकयामः ? ।

कविराज सूरिजी को सप्रणय प्रणाम कर बैठ गया और विषाद पूर्वक बोला—

पातुं नेत्राञ्जलिभिस्त्वद्रूपरसायनं विधिहतस्य ।
श्रीदेवसूरिसुगुरो ! नाभङ्गुरमस्ति मे भाग्यम् ॥

इस के उत्तर मे **देवसूरि** बोले—

कवीश्वर ! अप्रतिकार्योऽयं पुराकृतासुकृतपारिपाकः, परं कृतै व भगवत्या भारत्या त्वयि त्रिलोकाऽऽकलनकौशल-जुषः सारस्वतचक्षुषो वितरणेन करुणा ॥

   

उस समय गुर्जर देश उन्नति के अन्तिम शिखर पर चढा हुआ था। गुर्जरेश्वरों से क्या मालवेश और क्या कोंकणेश समीपवर्ती सभी नृपति कांपते रहते थे। गुजरात की प्रभुता और प्रतिष्ठा सुदूर तक प्रख्यात थी। भारत के सभी प्रदेशों में से प्रौढ प्रौढ पण्डित अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन कराने के लिये गुजराजधानी में अवश्य आया करते थे। गुर्जरपति की विद्वत्सभा भी भारत में आदर्श गिनी जाती थी। * ऐसी प्रभावशाली परि-

---

* कवि **यशश्चन्द्र** ने, **मुद्रितकुमुदचन्द्र** में, गुर्जरेश्वर की परिषद् का थोडासा वर्णन, **देवसूरि** और **श्रीपाल** के मुख से इस प्रकार करवाया है,—

देवसूरिः—कश्चायं स्वसभया पराजितायां सुधर्मायां सुधास्पर्धोऽनुबन्धो धराधीश्वरस्य, किं नालोक्यतेऽनेकचतुराननाः, किं न परिस्फुरन्ति गणनातिक्रान्ता गिरीशाः, किं न लक्षीक्रियन्ते लक्षशः पुण्डरीकाक्षाः, किं न जृम्भन्ते भूरिशो जिष्णवः, किं नोल्लसान्ति बहवो राजहंसाः, किं न विलसन्ति सहस्रशो भूतनयबुधाः, किं न प्रगल्भायन्ते मध्ये सुधर्माधिकृतमन्त्रिणः।

कविः—भगवन्! इदृगेव गुर्जरेश्वरस्य सभा। तथा हि—

तावद् व्याकरणप्रवीणभणितिः प्रागल्भ्यमुज्जृम्भते,
तावत्काव्यविचारभारधरणे धीरायते धुर्यता।
तावत्तर्ककथाऽनुबन्धविषये बद्धाभिलाषं मनो
यावन्नो **जयसिंहदेव**सदसि प्रेक्षावतामागमः॥

देवसूरिः—सा किं कलाप्यास्ति या न प्रेमाकुला चौलुक्यचन्द्रमासि।

कविः—भगवन्! एवमेवैतत्। तथा हि—

ऊढा प्रौढिर्न मन्त्रोद्धरणपरिणतैः कर्षितो न प्रकर्ष-

षद् का कविराज **श्रीपाल** प्रमुख सभ्य था—सभापति था। किस विद्वान् का कैसा स्वागत करना, किस तरह उस को आदर देना, इस विषय में **सिद्धराज** सदैव **श्रीपाल** ही की सलाह और सूचना लिये करता था। ऐसे प्रसंगों में से एक का वर्णन '**प्रभावकचरित**' के '**हेमचन्द्र–प्रबन्ध**' में (श्लोक १८२–३०९) विस्तार पूर्वक दिया हुआ है जिस में सें किंचित् भाग का भावार्थ यहां पर उद्धृत करते हैं।

एक समय, भागवत–संप्रदाय का कोई **देवबोधि** नामक महाविद्वान् **अणहिलपुर** में आया। वह बडा भारी विद्वान् और कवि था और अत्यंत अभिमानी था। राजा को उस ने न तो स्वयं जा कर कोई आशीर्वाद ही दिया और न कोई अपने आगमन का संदेश ही पहुंचाया। राजा को खबर पडने पर, **श्रीपाल** कवि से पूछा कि, यह **देवबोधी** कोई बहुत बडा विद्वान् और निस्पृही महात्मा है, इस लिये राजसभा में आने जाने की कोई दरकार नहीं करता; परंतु अपने देश में जब कोई ऐसा विद्वान् आवें तो उस का यथेष्ट सत्कार करना यह अपना कर्तव्य है। ऐसा नहीं करने पर राजा और प्रजा की परदेशों में अप-

---

स्तन्त्रोत्तानै रसेन्द्राऽभ्युदयविधिबुधैर्धारितं नोरद्धुत्वम्।
स्मार्तैः स्फूर्तिर्वितेने न, न पटिमगुणः स्फोटितो वेदविद्भिः
चर्चा चाणाक्यवाचां व्यरचि न सचिवैर्यत्र सिंहासनस्थैः॥

देवसूरिः—कविकुञ्जर! विदुषामखण्डपुण्यखेलितामिदं यदेवंविधः क्षितिपतिः सभापतिः।

कीर्ति होती है। इस लिये तुम बताओ कि, क्या किया जॉय ? प्रज्ञाचक्षु कवीश्वर ने कहा कि, महाराज ! मुझे तो यह कोई निस्पृही नहीं परंतु आडंबरी लगता है। अगर निस्पृही होता तो इस के साथ में जो इतना प्रपंच है वह क्यों रखता ? तौ भी यदि आप भारती–भक्त होने से उस से मिलना ही चाहते हैं तो अपने मंत्री द्वारा उस को स्वागत पूर्वक अपनी सभा में आने के लिए आमंत्रण भेज दीजिए। नृपति ने, कविराज की सूचनानुसार अपने मंत्री को, उस विद्वान् को आह्वान देने के लिये भेजा। मंत्री ने जा कर विद्वान् से विज्ञप्ति की, जिस के उत्तर में उस ने कहा—

आह्वानायागता यूयं मम भूपतिदेशतः ।
भूपालैः किं हि नः कार्य्यं स्पृहाविरहितात्मनाम् ॥
तथा काशीश्वरं कान्यकुब्जाधीशं समीक्ष्य च ।
गणयामः कथं स्वल्पदेशं श्रीगूर्जरेश्वरम् ॥
परमस्मद्दिदृक्षैव भवतां स्वामिनस्तदा ।
उपविष्टः क्षितौ सिंहासनस्थं मां स पश्यतु ॥

अर्थात्–राजा के आदेश से तुम लोक मुझे बुलाने के लिये आये हो सो ठीक है, परंतु हमारे जैसे निस्पृहियों को राजाओं से क्या लेना देना है। तथा काशीश्वर और कान्यकुब्जाधीश जैसे महान् नरेशों के देखे बाद गूर्जरेश्वर जैसे क्षुद्र नृपति को हम किस गिनती म गिने ! इतना होने पर भी तुमारे स्वामी को

मुझे देखने की पूर्ण उत्कंठा है तो यहां आ कर, सिंहासनासीन मुझ को, राजा जमीन पर बैठ कर देख–मिल सकता है !!

मंत्रीने जा कर यह वृत्तान्त राजा से निवेदन किया। **सिद्धराज** बडा विद्याविलासी और विनयस्वभावी था। उस के दिल में, इन उद्धत वाक्यों से, अनास्था के बदले और भी अधिक उत्कंठा हो आई। अवसर पा कर **सिद्धराज** अपने सहोदर समान **श्रीपाल** को साथ में ले **देवबोधी** के समीप गया। विद्वानों के वृन्द से विभूषित और मृगेन्द्रसदृश दुर्धर्ष सिंहासनासीन उस कवीश्वर को भक्ति पूर्वक नमस्कार कर के राजा क्षण भर सम्मुख खडा रहा। **देवबोधी** कवि ने राजा का अभिनन्दन कर पास के किसी सुखासन पर बैठ जाने के लिये हाथ से इशारा किया। राजा, अपने मित्र **श्रीपाल** कवि का बनाया हुआ

' इह हि वसति मेरुः शेखरो भूधराणा–
मिह विनिहितभाराः सागराः सप्त चान्ये ।
इह महिपतिदम्भस्तम्भसंरम्भधीरं
धरणितलमिहैव स्थानमस्मद्विधानाम् ॥ '

यह पद्य बोलता हुआ, प्रतीहार द्वारा जमीन ऊपर एक साधारण आसन डलवा कर, एक किनारे बैठ गया। **श्रीपाल** भी, राजा के पास ही था। उसे देख कर, **देवबोधी** कवि ने हाथ के इसारे से पूछा कि यह पर्षदा के अनुचित (अन्ध होने से) कौन मनुष्य है ? । **जयसिंहदेव** ने उत्तर दिया कि—

एकाहविहितस्फीतप्रबन्धोऽयं कृतीश्वरः ।
कविराज इति ख्यातः श्रीपालो नाम भूमिभूः ॥
श्रीदुर्लभसरोराजे तथा रुद्रमहालये ।
अनिर्वाच्यरसैः काव्यैः प्रशस्तीरकरोदसौ ॥
महाप्रबन्धं चक्रे च वैरोचनपराजयम् ।
विहस्य सद्भिरन्योऽपि नैवास्य तु किमुच्यते ॥

अर्थात्—एक ही दिन में जिस प्रतिभाशाली ने उत्तम प्रबन्ध (काव्य या नाटक) तैयार किया है और जो 'कविराज' के नाम से विख्यात है वह यह श्रीपाल नाम श्रीमान् (भूमिभू=ठकुर) गृहस्थ है । इस ने दुर्लभसरोवर और रुद्रमहालय जैसे विश्रुत स्थानों की अवर्णनीय रसवाली काव्य–प्रशस्तियां की हैं । वैरोचन–पराजय नाम का एक महा-प्रबन्ध भी इस कवीश्वरने बनाया है । सज्जन मनुष्यों को साधारण पुरुष भी हंसी करने लायक नहीं है तो फिर इस के बारे में तो कहना ही क्या है ? । राजा के मुख से यह सुन कर देवबोधी कुछ शमार्या और कुछ मुस्कराया । फिर एक गर्व और व्यंग पूर्ण श्लोक बोला कि—

शुक्रः कवित्वमापन्न एकाक्षिविकलोऽपि सन् ।
चक्षुर्द्वयविहीनस्य युक्ता ते कविराजिता ॥

राजा देवबोध महात्मा के सौजन्यपूर्ण (?) स्वभाव से परिचित हो गया और कुछ देर तक विद्वद्गोष्ठी तथा काव्यानन्द का रस ले अपने स्थान पर पहुंचा ।

श्रीपाल के कवित्व और महत्त्व की कल्पना इन प्रसंगों से आ सकेगी। जिस ने मात्र एक दिन जैसे अतिअल्प समय में महाप्रबन्ध की रचना कर डाली उस की कवित्वशक्ति की क्या कल्पना हो सकती है। इस महाकवि ने कितनी कृतियें कीं उस का पूरा पता नहीं और जिन का नाम निर्देश ऊपर हुआ है उन में से कितनी विद्यमान हैं यह भी ज्ञात नहीं।

हमारे देखने में मात्र दो लघु कृतियें आई हैं जिन में एक तो जैनधर्म के २४ तीर्थंकरों की स्तवनारूप २९ पद्यों की यमकमय स्तुति है। इस स्तुति के अंत में यह आशीर्वाद है–

इति सुमनसः श्रीपालकविरचितनुतयः समस्तजिनपतयः
अविनाशिज्ञानदृशो* दिशन्तु वः।

इस स्तुति का आदि पद्य इस प्रकार है—

भक्त्या सर्वजिनश्रेणिरसंसारमहामया।
स्तोतुमारभ्यते बद्धरसं सारमहामया॥

दूसरी कृति, वडनगर–प्राकार–प्रशस्ति है जो प्राचीन लेखमाला में छपी है। इस के भी २९ ही पद्य हैं। गुजरात के वडनगर नामक महास्थान–प्राचीन नाम आनन्दपुर–के चारों तर्फ वि. सं. १२०८ में, सिद्धराज के उत्तराधिकारी नृपति कुमा-

* विनश्वर चक्षु के विपाक का अनुभव करने वाला इस के सिवा और कैस पदार्थ की वाञ्छा कर सकता है।

रपाल ने एक मजबूत प्राकार (किला=कोट) बनवाया था। इस प्राकार के वर्णन और स्मरणार्थ यह प्रशस्ति कविराज ने बनाई थी। कवि के कवित्व की प्रसादी आज हमें केवल इसी प्रशस्ति के कारण मिल सकती है। नमूने के लिये कुछ पद्य लीजिए—

अस्मिन्नागरवंशजद्विजजनस्त्राणं करोत्यध्वरे
रक्षां शान्तिकपौष्टिकैर्वितनुते भूपस्य राष्ट्रस्य च।
मा भूत्तस्य तथापि तीव्रतपसो बाधेति भक्त्या नृपो
वप्रं विप्रपुराभिरक्षणकृते निर्मापयामास सः॥

   

कामं कामसमृद्धिपूरकरमारामाभिरामाः सदा
स्वच्छन्दस्वनतत्परैर्द्विजकुलैरत्यन्तवाचालिताः।
उत्सर्पद्गुणशालिवप्रवलयप्रीतैः प्रसन्ना जनै—
रत्रान्तश्च बहिश्च संप्रति भुवः शोभाद्भुतं बिभ्रति॥

   

यावत्पृथ्वी पृथुविरचिताशेषभूभृन्निवेशा
यावत्कीर्तिः सगरनृपतेर्विद्यते सागरोऽयम्।
तावन्नन्द्याद्द्विजवरमहास्थानरक्षानिदानं
श्रीचौलुक्यक्षितिपतियशःकीर्तनं वप्र एषः॥

एकाहनिष्पन्नमहाप्रबन्धः श्रीसिद्धराजप्रतिपन्नबन्धुः।
श्रीपालनामा कविचक्रवर्ती प्रशस्तिमेतामकरोत्प्रशस्ताम्॥

इस की रचनाओं में के कोई कोई पद्य प्रासादिक काव्य

के रूप में कुछ कुछ ग्रन्थकारों ने उद्धृत किया है। जल्हण कवि की सूक्तिमुक्तावली में निम्न लिखित दो पद्य इस 'कविराज' के नाम से संग्रहीत हैं।

नेयं चूतलता विराजति धनुर्लेखा स्थितेयं पुरो
नासौ गुञ्जति भृङ्गपद्धतिरियं मौर्वी टणत्कारिणी।
नैते नूतनपल्लवाः स्मरभटस्यामी स्फुटं मार्गणाः
शोणास्तत्क्षणभिन्नपान्थहृदयप्रस्यन्दिभिः शोणितैः॥

पच्यन्ते स्थलचारिणः क्षितिरजस्यङ्गारभूयङ्गतैः
क्वथ्यन्ते जलजन्तवः प्रतिनदं तापोल्वणैर्वारिभिः।
भृज्यन्ते खचराः खरातपशिखापुञ्जे तदेभिर्दिनै-
र्मांस्पाकः क्रियते दिनेशनियमा............ध्रुवम्॥

सहस्रलिङ्ग या दुर्लभसरोवर का जो कविराज ने अपने कवित्व के सर्वस्वरूप प्रशस्तिकाव्य बनाया था, उस के दो पद्य मेरुतुङ्गाचार्य ने प्रबन्धचिन्तामणि में उधृत किये हैं। यथा—

न मानसे माद्यति मानसं मे
पम्पा न सम्पादयति प्रमोदम्।
अच्छोदकाच्छोदकमत्र सारं
विराजते कीर्तितसिद्धिभर्तुः॥

कोशेनापि युतं दलैरुपचितं नोच्छेत्तुमेतत्क्षमं
स्वस्यापि स्फुटकण्टकव्यतिकरं पुंस्त्वं च धत्ते नहि।

एकोऽप्येष करोति कोशरहितो निष्कण्टकं भूतलं
मत्वैवं कमला विहाय कमलं यस्यासिमाशिश्रियत् ॥

इस पिछले पद्य के वारे में **प्रबन्धचिन्तामणिकार** ने एक विचित्र वृत्तान्त दिया है। लिखा है कि जब यह प्रशस्ति बन–लिख कर तैयार हो गई, तब इस का परीक्षण–संशोधन करने के लिये **सिद्धराज** ने सब मतों के नामी नामी विद्वानों को बुलाये। सुप्रसिद्ध **हेमचन्द्राचार्य** का शिष्य महाकवि **रामचन्द्र** भी वहां पर आया। यह कवि बडा सूक्ष्मदृष्टि और निपुणमति था। इस लिये, **हेमचन्द्राचार्य** ने पहले ही से इस को सूचना कर दी थी कि, सभी विद्वान् श्रीपाल की की हुई प्रशस्ति की एक स्वर से प्रशंसा करेंगे इस लिये तुमने कोई अपनी विदग्धता नहीं दिखाना। खैर, सब विद्वान् वहां पर एकत्र हुए और सभीने प्रशस्ति की कविता की बडी प्रसंशा की। भिन्न भिन्न विद्वानों ने प्रत्येक पद्य उपर भिन्न भिन्न प्रकार के गुणों और अलंकारों का उत्तम विवेचन किया। विशेष कर इस (पिछले) पद्य की खूब प्रसंशा हुई। परंतु, कवि **रामचन्द्र** कुछ भी नहीं बोला और तटस्थ भाव से सब कर्वाई देखते रहा। जब **सिद्धराज** ने आग्रहपूर्वक पूछा कि इस पद्य के विषय में आप की क्या राय है?, तब **रामहन्द्र** ने कहा कि–इस में दो दूषण है इस लिये यह चिन्तनीय है। विद्वानों का बहुत आग्रह होने पर उस ने दूषणों का उद्घाटन करते हुए कहा कि ‘ दल ’ शब्द का दूसरा

अर्थ जो सैन्य किया जाता है वह कोष–विरुद्ध है और 'कमल' शब्द को नित्य नपुंसक कहा है वह भी व्याकरण–विरुद्ध है। फिर **सिद्धराज** के आग्रह से 'दल' शब्द का तो ज्यों त्यों कर के सैन्य अर्थ स्थापित किया और 'कमल' शब्द का नित्य नपुंसकत्व मिटाने के लिये पाठ–परिवर्तन कर के दिखाया। इस प्रकार **रामचन्द्र** कवि की सूक्ष्मेक्षिका देख कर सब विद्वान् चमत्कृत हुए, परंतु **सिद्धराज** की नजर लग जाने से, मकान में पहुंचते पहुंचते ही उस की एक आंख जाती रही!

वादी **देवसूरि** के गुरुभ्राता आचार्य **विजयसिंह** के शिष्य **हेमचन्द्र** ने '**नाभेय–नेमि–द्विसन्धान**' नाम का एक काव्य (प्रबन्ध) बनाया है जिस का संशोधन श्रीपाल कवि ने किया था, ऐसा उस के अन्तिम पद्य से जाना जाता है। यथा—

एकाहनिष्पन्नमहाप्रबन्धः श्रीसिद्धराजप्रतिपन्नबन्धुः।
श्रीपालनामा कविचक्रवर्ती सुधीरिमं शोधितवान् प्रबन्धम् ॥*

आबू पहाड के देलवाडा नामक स्थान पर विमलसाह का बनवाया हुआ जो जगप्रसिद्ध जैनमंदिर है उस के रङ्गमण्डप में, एक स्थंभ के पास, संगमर्मर की एक पुरुष–प्रतिमा प्रतिष्ठित है, जो इसी **श्रीपाल** कवि की हों ऐसा प्रतीत होता है। इस मूर्ति के नीचे ८–१० पंक्तियों का एक छोटासा लेख खुदा हुआ है।

* देखो, जैनहितैषी, भाग १२, संख्या ९–१०, में, **सूक्तिमुक्तावली** और **सोमप्रभाचार्य**, शीर्षक मेरा लेख।

इस लेख की जो प्रतिकृति हमारे पास है वह स्पष्ट नहीं है इस लिये उस का उत्तर भाग साफ साफ पढा नही जाता । प्रारंभ का एक पद्य कितनीक कठिनता के साथ जो वांचा जाता है वह इस प्रकार है:—

प्राग्वाटान्वयवंशमौक्तिमणेः श्रीलक्ष्मणस्यात्मजः
श्रीश्रीपालकवीन्द्रबन्धुरमलश्चाशालतामण्डपः ।
श्रीनाभेयजिनांह्रिपद्ममधुपस्त्यागाद्भुतैः शोभितः
श्रीमान् शोभित एष सद्यविभवः स्वर्गौकमासेदिवान् ॥

(देखो, मेरा, प्राचीनजैनलेखसंग्रह, नं. २७१).

इस पद्य से ज्ञात होता है कि **श्रीपाल** कविराज के पिता का नाम लक्ष्मण था । लेख का पिछला भाग जो यदि स्पष्ट पढा जाय तो इस में से कुछ और भी वृत्तान्त इस कवि के बारे में उपलब्ध हो सकता है । इस अस्पष्ट भाग में से जो कोई कोई शब्द वांचा जाता है उससे जाना जाता है, कि वहां पर **श्रीपाल** के कुछ पुत्रों का उल्लेख है । वह मूर्ति जिस के नीचे यह लेख है, भगवान् **आदिनाथ** तीर्थंकर की भव्य मूर्ति के सन्मुख हाथ जोडे खडी है और मानों प्रभु से प्रार्थना कर रही है, ऐसा दृश्य है । संभव है कि, **श्रीपाल** का कुल, इस अद्भुत मंदिर के निर्माता गुर्जरेश्वर **भीमदेव** के प्रबल दण्डनायक **विमलशाह** § ही की संतति में से हों ।

§ **विमलशाह** ने यह मन्दिर वि. सं. १०८८ में प्रतिष्ठित किया था ।

श्रीपाळ के पिता से ले कर, इस नाटक के कर्ता **विजयपाळ** के अस्तित्व का समय–अनुमान इस प्रकार होता है–

१	लक्ष्मण	(वि. सं.)	११००–११५०
२	श्रीपाल	,,	११५१–१२१०
३	सिद्धपाल	,,	१२११–१२५०
४	विजयपाल	,,	१२५१–१३००

अन्त में, श्रीयुत **तनसुखरामभाई** का आभार मान कर इस प्रस्तावना को समाप्त करते हैं, कि जिन की साहित्यप्रियता के कारण, गुजरात के सर्वश्रेष्ठ ऐसे इस कविकुल का नाम रखने वाले इस नाटक की जीर्णप्रति अभी तक विनाश के मुख में पडने से बच रही और अब पुनर्जन्म धारण कर, एक से अनेक बन कर, अमर होन का सौभाग्य प्राप्त किया ।

भारत जैन विद्यालय,
पूना । } मुनि जिनविजय ।





महाकवि–

विजयपाल–विरचितं

द्रौपदीस्वयंवरम् ।

श्रीसरस्वत्यै नमः ।

अम्भोजासनसारथौ क्षितिरथे चन्द्रार्कचक्रे स्थितो
लक्ष्मीनायकसायकं युधि दधद्देवाद्रिबाणासनम् ।
निर्भिद्य त्रिपुरं पुरा जयरमामासाद्य मोदं दधन्
सोऽयं धन्विधुरन्धरो विजयते चन्द्रार्धचूडामणिः ॥ १ ॥

अपि च–

आश्चर्योदयबन्धुसिन्धुमथनप्रारम्भसंरम्भिणं
दुर्वारामरवैरिवारणचमूपञ्चत्वपञ्चाननम् ।
दैत्यादैत्यपराङ्मुखी गुरुगुणग्रामानुरागानुगा
यं लक्ष्मीरवृणोत्स्वयं स भगवांल्लक्ष्मीपतिः पातु वः ॥ २ ॥

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) कस्कोऽत्र अस्मत्परिजनेषु ।

(प्रविश्य पटाक्षेपेण)

पारिपार्श्वकः—(सविनयं) (क) भाव ! एसो म्हि ।

सूत्रधारः—अद्याहं श्रीचौलुक्यकुलराज्यकमलाकेलिकाञ्चनकमलेन भुजपरिघपरित्रातधरित्रीमण्डलेन जयलक्ष्मीकर्णकुण्डलेन पृथ्वीतलाखण्डलेन नयवर्त्मवर्त्तनाभिरामतारामदेवेन अभिनवसिद्धराजमहाराजश्रीभीमदेवेन समादिष्टोऽस्मि । यदस्मिन्वसन्तोत्सवे त्रिभुवनाद्भुतप्रभाववैभवानां श्रीमत्त्रिपुरुषदेवानां पुरतः प्रमोदिताणहिल्लपाटकं नाटकं भवताऽभिनीयतामिति ।

पारिपार्श्वकः—(ख) भाव ! किं पि अवरं पुच्छिदुकाम म्हि ।

सूत्रधारः—यदृच्छया पृच्छ ।

पारिपार्श्वकः—(ग) नरिंदमणाणंदणाय जं अच्चब्भुदं करणं तुम्हेहि मह आणत्तं तं अवरे वि कवडघडणानिउणेहि नाडएहि नच्चिदुं प्रारद्धं । ता किं मए कायव्वं ।

सूत्रधारः—मा कार्षीर्विषादम् । वृथैव तैरयं शृगालजागरः प्रारब्धः । न खलु बहुभिरप्याखुचर्मभिः सिन्धुराधिराजबन्धननिबन्धनं दाम निगड्यते । न च गगनाङ्गणावगाहसम्भृताभियोगैर्गणनातिगैरपि खद्योतैस्तिमिरमलिनभुवननिर्मलीकरणकमठस्य कर्मसाक्षिणः कर्म निर्मीयते । तदलं चिन्तया । यतः—

(क) भाव ! एषोऽस्मि ।

(ख) भाव ! किमप्यपरं प्रष्टुकामोऽस्मि ।

(ग) नरेन्द्रमनआनन्दनाय यदत्यद्भुतं करणं युष्माभिर्ममाज्ञप्तं तदपरैरपि कपटघटनानिपुणैर्नटैर्नर्तितुं प्रारब्धम् । तत् किं मया कर्तव्यम् ।

दुष्करं करणं कुर्वन्नुर्वीपालात्प्रसेदुषः ।

भवानेव सखे ! जिष्णुर्लक्ष्मीं सम्प्राप्स्यति क्षणात् ॥ ३ ॥

पारिपार्श्वकः—(सहर्षं) (क) इमिणा अज्जस्स वयणेण णिच्चिंतो दाणिं संवुत्त म्हि । ताव पढमं मं पत्थुदरूवयनामनिवेयणेण पसीददु अज्जो ।

सूत्रधारः—अस्त्येव श्रीकविराजात्मजमहाकविसिद्धपालस्य सूनुना महाकविना विजयपालेन निबद्धं द्रौपदीस्वयंवराभिधानं वीराद्भुतरसप्रधानं नाटकम् ।

(नेपथ्ये ध्रुवा गीयते)

(ख) उम्मायकरो भुअणे जयइ विहू जस्स संनिहाणेण ।

दुल्लक्खं पि हु भिंदइ लीलाए जणमणं मयणो ॥ ४ ॥

सूत्रधारः—(आकर्ण्य) साधु प्रक्रान्तं भरतविद्याभिनयकुशेशयपरिशीलनशीलालिभिः शैलालिभिः । यदनया रजनिजानिवर्णनपरया ध्रुवया राधावेधसमुद्यतधनञ्जयसाहाय्यककृताभियोगस्य मदगर्जदतिदुर्जयदुर्जनजनदलननिपुणमायाप्रयोगस्य तत्रभवतः कैटभारेः प्रवेशः सूचितः । तदेहि आवामप्यनन्तरकरणीयाय सज्जीभवावः ।

(इति निष्क्रान्तौ ।)

॥ **आमुखम्** ॥

(क) अनेन आर्यस्य वचनेन निश्चिन्त इदानीं संवृत्तोऽस्मि । तावत्प्रथमं मां प्रस्तुतरूपकनामनिवेदनेन प्रसीदतु आर्यः ।

(ख) उन्मादकरो भुवने जयति विधुर्यस्य सन्निधानेन ।

दुर्लक्ष्यमपि खलु भिनत्ति लीलया जनमनो मदनः ॥ ४ ॥

(ततः प्रविशति कृष्णः ।)

कृष्णः—(विमृश्य स्वगतं सहर्षं)

तस्मै देया त्वयाऽसौ खलु निजतनया यो धनुर्वेदधीरो
राधावेधं विधत्ते द्रुपदनरपतेः पूर्वमादिष्टमेवम् ।
दम्भोलिस्तम्भशोभासुभगभुजयुगभ्राजिपार्थानुयाता-
स्ते चानीता इहैवानिलतनयसुतं प्रेष्य पाण्डोस्तनूजाः ॥५॥

तदिदं तावत्सुविहितम् । परमद्यापि कियदवशिष्यते । भवतु तावत् । आयातु भीमः ।

(ततः प्रविशति भीमः ।)

(भीमः परिक्रम्य यथोचितं सम्भावयति ।)

भीमः—(सविनयं) अयि भगवन् ! वीरावतंसकंसविध्वंस-लब्धप्रशंस ! किमिति वयमाकारिताः । आदेशदानेन प्रसीदतु भगवान् ।

कृष्णः—वत्स ! पाण्डवाभ्युदयादन्यत्र वयं कदा किञ्चिद-प्युपक्रमामहे । ततः परशुरामप्रसादीकृतपञ्चशरीमध्याद् राधावेधाय सूतसूताद्विशिखद्वयं याचनीयम् । तच्चादाय अलक्षितवेषविशेषविधातृभिः स्वभ्रातृभिः सह कृतार्थेन भवता राधावेधमण्डपोऽलङ्करणीयः । वयमपि सम्प्रति तत्र राधावेधनाटके द्रुपदनरपतेः परिपार्श्ववर्तिनो भवामः ।

(इति निष्क्रान्तः ।)

भीमः—(परिक्रम्य पुरोऽवलोक्य च) अये !

अमानदानसानन्दवन्दिसन्दोहसङ्कुलम् ।
कर्णस्य मन्दिरद्वारमनुक्तमपि लक्ष्यते ॥ ६ ॥

(इति परिक्रम्य द्विजरूपधारी तारस्वरेण वेदोद्गारं करोति ।)

(ततः प्रविशति प्रतीहारपुरोहिताभ्यामनुगतो दानास्थानमण्डपस्थः कर्णः ।)

कर्णः—(सोत्कण्ठं)

चतुर्युगायमाना मे चतस्रो नालिका गताः ।
सम्भावयत्यपूर्वोऽर्थी नाद्याप्यद्य कुतोऽपि माम् ॥ ७ ॥

(नेपथ्ये वेदध्वनिः)

कर्णः—(आकर्ण्य सानन्दं) अयि प्रतीहार ! ममागारद्वारदेशे तारवेदोद्गारपरायणाः कथय कियन्तः सन्ति द्विजातयः ।

(प्रतीहारो निष्क्रम्य पुनः प्रविशति ।)

कर्णः—(सौत्सुक्यं)

कोटिः ?

वेत्री— न,

कर्णः— प्रयुतम् ?

वेत्री— नैव,

कर्णः— लक्षम् ?

वेत्री— न,

कर्णः— अप्ययुतम् ?

वेत्री— नहि ।

कर्णः—सहस्रम् ?

वेत्री— न,

कर्णः— शतम् ?

वेत्री— नैव,

कर्णः— दश ?

वेत्री— नो,

कर्णः— नव ?

वेत्री— न,

कर्णः— अष्ट ?

वेत्री— न ॥ ८ ॥

कर्णः—सप्त ?

वेत्री— न,

कर्णः— षड् ?

वेत्री— नहि,

कर्णः— पञ्च ?

वेत्री— न,

कर्णः— चत्वारः ?

वेत्री— न,

कर्णः— त्रयः ?

वेत्री— नहि,

कर्णः— द्वौ ?

वेत्री— न ।

कर्णः—(शिरः कम्पयन् सविस्मयं)

एकस्यायमहो ! बत ! रोदःकुक्षिम्भरिर्निनदः ! ॥ ९ ॥

तत्प्रवेशय त्वरिततरमेनम् ।

(वेत्री तथा करोति)

द्विजः—स्वस्ति अनल्पजनसङ्कल्पकल्पपादपाय चम्पाधिपाय ।

कर्णः—(द्विजरूपधारिणं भीमसेनमवलोक्य स्वगतं) आकारवेषौ परस्परं विसंवादमासादयतः । भवतु । किमेतया चिन्तया । (प्रकाशं पुरोहितं प्रति) अयि पुरोहित ! पृच्छ वाञ्छितममुष्य द्विजस्य ।

पुरोहितः—(द्विजं प्रति)

किं वित्तप्रयुतस्पृहा ?

द्विजः— नहि,

पुरोहितः— रुचिर्मुक्तासु किं ते ?

द्विजः— नहि,

पुरोहितः—स्वर्णानीह किमीहसे ?

द्विजः— नहि,

पुरोहितः— मणीन्किं काङ्क्षसे त्वं ?

द्विजः— नहि।

पुरोहितः—गोलक्षं किमु लिप्ससे ?

द्विजः— नहि,

पुरोहितः— तवाश्वीये किमाशा ?

द्विजः— नहि,

पु०:—व्रातं वाञ्छसि दन्तिनां किमु ?

द्विजः— नहि,

पु०— क्ष्मां याचसे किं ?

द्विजः— नहि ॥

कर्णः—अयि पुरोहित ! प्रतीक्षस्व क्षणम् । स्वयमेवाहममुष्य मनोरथमवगमिष्यामि ।

कर्णः—(द्विजं प्रति सविशेषरोमाञ्चं स्वभुजावालोक्य)

जित्वा जगत् किमु ददे ?

द्विजः— नहि,

कर्णः—(सविनयं) किं स्वमङ्गं

दास्ये ददे ?,

द्विजः— नहि,

कर्णः—(सहसा सोल्लासं दक्षिणकरेण क्षुरिकामादाय निजकण्ठोपकण्ठे निवेश्य च) शिरो नु ददे ?,

द्विजः—(सौत्सुक्यं कराभ्यां क्षुरिकाकरं धारयन्) न नैतत् ।

कर्णः—(सवैलक्ष्यम्)

यद्रोचते कथय तन्मुदितोऽस्मि येन
गम्भीरधीरमधुरेण तव स्वरेण ॥ ११ ॥

द्विजः—(सप्रत्याशं)

भगवद्भार्गवादत्तशरपञ्चकमध्यतः ।
राधावेधाय राधेय ! ममार्पय शरद्वयम् ॥ १२ ॥

कर्णः—(सचमत्कारं स्वगतं) अहो ! द्विजातिजातिदुर्लभः क्षत्रियकुलोचितोऽयमस्य मनोरथः । (प्रकाशं) अयि प्रतीहार ! तूर्णं तूणीरममुष्य देहि । येन निजपरीक्षया स्वीकरोति शरद्वयम् ।

द्विजः— × × × × × ×

कर्णः—(अपवार्य प्रतीहारस्य कर्णे ।) एवमेव ।

(प्रतीहारस्तथा करोति ।)

(द्विजः सर्वानपि शरानाकृष्य कराभ्यां निष्पिष्य वज्रसारशरद्वयमेव दर्शयति ।)

प्रतीहारः—

शरजालेऽमुना क्षुण्णे परिशिष्टावुभौ शरौ ।
युगान्तसंहृते विश्वे देवौ हरिहराविव ॥ १३ ॥

कर्णः—(स्वगतं) अमुना भुवनाद्भुतेन भुजबले भवते भवते (?)........

(इति प्रक्रिामति । स्मृत्वा) वयमपि दुःसाधराधावेधसमुद्यतदुर्योधनवसुधाधिपसविधमधिगच्छामः ।

(इति निष्क्रान्तः ।)

भीमः—(परिक्रम्य) कथममी भ्रातरो मामेव प्रतीक्षमाणाः प्रेक्ष्यन्ते ।

(ततः प्रविशन्ति युधिष्ठिरादयः ।)

भीमसेनः—(शरौ दर्शयति) प्रचल सत्वरम् (?) । येन तत्र मण्डपे गच्छाम इति ।

सर्वे—(परिक्रम्य पुरोऽवलोक्य च) अये ! कथमयं मिलत्सकलकाश्यपीवलयमहीपालमालापरिकरलोकसङ्कुलिताकलितबहुलकोलाहलो नभस्तलतरलविपुलपताकामण्डलीमण्डितो राधामण्डपः ।

(ततः प्रविशति यथोक्तमण्डपस्थः सकलदिगन्तागतनृपचक्रपरिकलितो राधास्तम्भसविधस्थितो द्रुपदः । युधिष्ठिरादयः सर्वे मण्डपैकदेशेन च विशन्ति ।)

युधिष्ठिरः—(समन्तादवलोक्य) कथमद्यापि चिरयति अस्मद-

भ्युदयसाहाय्यकव्यसनी तत्रभवान् वसुदेवनन्दनः ।

(ततः प्रविशति सोन्मादयादवजनानुगम्यमानः कृष्णः ।)

कृष्णः—(समन्ताद् मण्डपमवलोक्य स्वगतम् ।)

शक्रातिक्रमविक्रमक्रमचणं चक्रं नृपाणामितो
वीरैः स्वैरमितो वृतो मदधनो दुर्योधनो भूपतिः ।
भूपालः शिशुपाल एष कलितो निस्वानवैर्दानवैः
प्रच्छन्नाकृतयश्च पौरुषपुषः पञ्चाप्यमी पाण्डवाः ॥ १४ ॥

अपि च—

अयं पञ्चालभूपालश्चापं चण्डीपतेरिदम् ।
कृतधन्विमनो राधाराधावेधमुदीक्षते ॥ १५ ॥

(सस्मरणं सोन्मादं च ।)

स्मृतायां नामसाम्येन राधायां राधयानया ।
आनन्दखेदसम्भेदमासादयति मे मनः ॥ १६ ॥

अपि च—

मन्मथोन्माददायिन्या मनस्विन्या दिवानिशम् ।
राधाया अपि दुर्भेदं राधाया मन्महे मनः ॥ १७ ॥

(द्रुपदवासुदेवौ यथोचितं सम्भावयतः ।)

द्रुपदः—भगवन् ! मिलितमखिलमपि भूपालमण्डलम् । तदत्रभवन्तो भवन्त एव प्रत्येकं वीरानाहूय राधावेधं कारयत ।

कृष्णः—एवं कुर्मः । (इति राधास्तम्भसविधमुपसृत्य उच्चैःस्वरम् ।) भो भो राधावेधमण्डपाभ्युपगताः सर्वेऽपि भूपतयः! शृण्वन्तु भवन्तो द्रुपदनरपतेः प्रतिज्ञाम् । यतः—

स्तम्भः सोऽयं गिरिरिव गुरुर्दक्षिणावर्त्तमेकं
वामावर्त्तं विकटमितरच्चक्रमावर्त्ततेऽत्र ।
आस्ते लोलस्तदुपरि तिमिस्तस्य वामाक्षितारा-
लक्ष्यं प्रेक्ष्यं तदपि निपुणं तैलपूर्णे कटाहे ॥ १८ ॥

अपि च—

चापं पुरो दुरधिरोपमिदं पुरारे-
रारोप्य यो भुजबलेन भिनत्ति राधाम् ।
रूपान्तराभ्युपगता जगतां जयश्रीः
पञ्चालजा खलु भविष्यति तस्य पत्नी ॥ १९ ॥

(इत्यभिधाय दुर्योधनाभिमुखं मुखं दृशं च निधाय)

राजन्नेतौ सुरकरिकराकारभाजौ भुजौ ते
त्वं मेदिन्यां विकटकटकक्ष्मापकोटेः किरीटम् ।
मानस्तोमः प्रभवति भवन्मानसे मुक्तमान-
स्तत्त्वं दुर्योधन ! जयधनं चापमारोपयैतत् ॥ २० ॥

दुर्योधनः—(सावहेलं) युवराजमेवादिशामि । (दुःशासनं प्रति)

कुमार ! सुखमारोप्य दुःशासन ! शरासनम् ।
राधामनपराद्धेषो भिन्द्धि स्त्रीरत्नलब्धये ॥ २१ ॥

दुःशासनः—(सगर्वसंरम्भं)

उद्दण्डमद्भुजादण्डचण्डताकुण्डलीकृतम् ।
खण्डेन्दुमण्डनस्येदं कोदण्डं यातु खण्डताम् ॥ २२ ॥

(इति तदभिमुखमुपसृत्य चापमारोपयन्भूमौ पतति ।)

वासुदेवः—(दृष्ट्वा)

कामारिकार्मुकारोपगलितं निजदोर्बलम् ।
पतितोऽयमधोग्रीवो निरीक्षित इव क्षितौ ॥ २३ ॥

(दुःशासन उत्थाय सलज्जमपक्रामति ।)

दुर्योधनः—(मातुलकशकुनिं प्रति ।)

धूर्जटेर्धन्व सन्धाय चण्डिमातुलमातुल ! ।
राधावेधं विधेहि त्वं शकुने ! शकुनेरितः ॥ २४ ॥

शकुनिः—(सावज्ञं) किमस्मिन्नप्यर्थे शकुनालोकनेन ! ।

कृष्णः—(स्वगतं) लीलयैवायं धनुरारोपयिष्यति । तद्भवतु । मायामाचरामि ।

[शकुनिः] (यावद्धनुरारोपयति तावदन्तराले [कृष्णः] वेतालमण्डलं बिभीषिकायै प्रेषयति ।)

शकुनिः—(उत्थाय यावद्धनुरादित्सति तावदन्तराले वेतालजालमवलोक्य सत्रासकम्पं ।) अहो ! कथमिदं धनुरारोप्यते । यतः—

शिरालवाचालजटालकाल-
करालजङ्घालफटालभालम् ।
उत्तालमुत्तालतमालकालं
वेतालजालं स्खलयत्यलं माम् ॥ २५ ॥

(इति पश्चादपक्रामति ।)

(दुर्योधनो द्रोणसम्मुखमवलोकयति ।)

द्रोणः—(दुर्योधनं प्रति) महाराज ! किमस्माकमतिवयसामनया राधया कार्यम् । भवदर्थमेवायमुपक्रमः क्रियते ।

(इत्युत्थाय धनुरभिमुखं धावति ।)

(कृष्णः सहसा तदन्तराले मायामयमन्धकारमङ्कुरयति ।)

द्रोणः—(पुरोऽवलोक्य तिमिरतिरस्कारिणीतिरस्कृतलोचनालोकः प्रतिनिवृत्य दुर्योधनं प्रति ।)

कृष्णक्षपा समुदगात्किमभूदकाण्डे
किं दुर्दिनं किमभवन्मम सन्निपातः ।
किं स्वापमापमगमं किमु नागवेश्म
किं गर्भवासमविशं नहि वेद्मि किञ्चित् ॥ २६ ॥

(दुर्योधनः—गाङ्गेयसम्मुखमुदीक्षते ।)

गाङ्गेयः—

मुक्तिक्रीडाकरमकरवं यत्नतो ब्रह्मचर्यं
तन्मे कृत्यं रतिरमयितुर्मायया जायया किम् ।
नारीपाणिग्रहणपणितामेवमेवापि भिन्दन्
राधामेनां कुलगुरुरहं लज्जया रुद्ध एषः ॥ २७ ॥

दुर्योधनः—अयि चम्पाधिराज ! चापारोपणचापलमाचरन् विसूत्रय राधायन्त्रम् ।

कर्णः—(स्वभुजौ निर्वर्ण्य)

शेषभोगसमाभोगमद्भुजस्तम्भपीडनम् ।
क्षमिष्यते गुणारोपमात्रमप्यत्र नो धनुः ॥ २८ ॥

अपि च—अखिलतरुकुञ्जभञ्जन ! कुरुराज ! वितर वितर मम सत्वरतरमादेशम् ।

मथ्नातु किं रविरथध्वजमिन्दुलक्ष्म
किं तक्षतु, क्षिपतु किं मुकुटं मघोनः ।
राधां यथाविधि विभिद्य ममाद्य बाणः

किं दुष्करान्तरमपि प्रसभं करोतु ॥ २९ ॥

दुर्योधनः—किमसम्भाव्यमस्मदीयबान्धवभुजबलस्य । परं सम्प्रति प्रस्तुतमेव प्रस्तूयताम् ।

(कर्णस्तदभिमुखमुपसर्पति ।)

(कृष्णः—अन्तराले मायामयमर्जुनद्रौपदीविवाहं दर्शयति ।)

कर्णः—(विलोक्य सविस्मयमपसृत्य ।)

इहोद्वहति पार्थोऽयं कृतार्थो द्रुपदात्मजाम् ।
तन्मे कृष्णावध्वा राधामुच्छिष्टां च भिनत्ति कः ॥ ३० ॥

दुर्योधनः—भवन्तु, अमी । वयं स्वयमेव याज्ञसेनीपाणिपीडनप्रतिभुवं धनुर्दण्डमारोपयिष्यामः । (इत्युत्थाय तथाकुर्वन्करद्वयकम्पमभिनयति ।)

कृष्णः—(विलोक्य)

करकम्पोऽभवद्भीतिजातः स्वेदजलाकुलः ।
न करः कुरुराजस्य धनुर्धर्तुमपि क्षमः ॥ ३१ ॥

(निरवशेषदर्शितनिजबलोऽपि धनुर्दण्डसारमसहमानो दुर्योधनः क्षितितले निपतति ।)

(कृष्णः सानन्दं स्मयते ।)

(सकलमपि राजचक्रं मुक्तप्रत्याशं विलक्षमधोमुखमीक्षते ।)

कृष्णः—

नारोपि चापं मनुराजपुत्रै-
र्नारोपि चापं दनुनन्दनैश्च ॥ ३२ ॥

शिशुपालः—(सकोपाटोपं ललाटतटघटितभ्रकुटीविटङ्कः ।)

रे रे गोकुलवीर ! कीर इव किं यत्किञ्चिदाभाषसे
यन्नारोपि नरेश्वरैस्तदिह किं नारोपि दैत्यैरपि ।

किं जानासि न विश्वविश्ववलयापर्यायपर्यासना
प्राप्तालं शिशुपाल एष पुरतो राधाभिदे तिष्ठते ॥ ३३ ॥

अन्यच्च—

यत्रोच्चैः कनकाचलः कलयति स्तम्भस्य लीलायितं
ताराचक्रमजस्रचङ्क्रमणतश्चक्रश्रियं गाहते ।
शीतांशुः श्रयते चलत्तिमिकलां लक्ष्यं तदेणेक्षणं
वीरोऽहं तदपि क्षिणोमि रभसात्किं मेऽनया राधया ॥३४॥

(इति ससंरम्भं विकटपदक्रमं परिक्रामति ।)

कृष्णः—(सभयकम्पं) न जाने किमिदानीं भविष्यति । अतिबलीयानयं खलः । भवतु, भुवनत्रयं भवधनुषि भाराय समारोपयिष्यामि । (इति तथा करोति ।)

शिशुपालः—(पुरो भवधनुषि भुवनत्रयमवलोक्य सविस्मयं)

स्वर्गः समग्र इह सम्भृतदेववर्गो
भूरत्र भूरितरभूधरसिन्धुरुद्धा ।
पातालमत्र फणिजालवृतान्तराल-
मालोक्यते धनुषि चित्रमिह त्रिलोकी ॥ ३५ ॥

(सरोमाञ्चम्)

पुण्यैरगण्यैर्भगवान् प्रसन्नोऽद्य विधिर्मयि ।
त्रिलोकीजयकीर्त्तिर्यद्भविता चापभञ्जतः ॥ ३६ ॥

(कृष्णः— शिशुपाले चापे च मुहुर्मुहुः सभयं दृशं निवेशयति ।)

(शिशुपालो धनुरादत्ते ।)

(कृष्णः सर्वेषामपि मायया नयनालोकं निरुध्य स्वयमुत्थाय कराभ्यां शिशुपालमाहत्य भूमौ पातयित्वा स्वस्थानमेव समेत्योपविशति ।)

(शिशुपालो मूर्च्छाविरामं प्राप्य सलज्जमपक्रामति ।)

कृष्णः—अहो ! द्विजा एवावशिष्यन्ते । तदामन्त्रयाम्येतान् । (स्वगतं) धनुर्धरैकधुरीणं सव्यसाचिनमामन्त्रयामि । अहो कार्पटिका- एहि एहि ।

(किरीटी उत्थाय राधासविधमुपसर्पति ।)

कृष्णः—यदि कस्यापि भुजबलाभिमानोऽस्ति तदारोप्यतामिदं राधावेधाय धूर्जटेर्धनुः ।

पार्थः—(सविनयं धनुर्नमस्कृत्य)

क्षत्रव्रतमखण्डं चेद्भक्तिर्गुरुषु मे यदि ।
भव तत्सुकरारोपं भगवन् हरकार्मुक ! ॥ ३७ ॥

(इति दोर्भ्यामादाय त्रिभागमाक्रम्य धनुरारोपयति ।)

गाङ्गेयः—(द्रोणं प्रति)

द्विजेन पश्यतानेन केवलं न धनुर्गुणः ।
परां कोटिं निजप्राणगुणोऽपि गमितः क्षणात् ॥ ३८ ॥

भीमः—(जनान्तिकं पार्थं प्रति ।) इदं मया विशिखद्वयमानीतं परं न समर्थोऽसि राधावेधाय ।

पार्थः—

एतां न पाटयाम्यद्य यदि राधां वृकोदर ! ।
इतः प्रभृति नो चापं करिष्यामि करे ततः ॥ ३९ ॥

(इति एकेन शरेण मन्दं चक्रमाहन्ति ।)

(नृपाः सर्वेऽपि हसन्ते हर्षकोलाहलं [च] कुर्वन्ति ।)

(मत्स्यस्तेन शब्देन सविस्मयो निश्चललोचनो विलोकयति ।)

(पार्थो द्वितीयशरेण यथाविधि मीनलोचनकनीनिकामाहन्ति ।)

कृष्णः—(सानन्दम्) अयि द्रुपदनरपते ! दिष्ट्या वर्द्धसे हेतुर्वरलाभेन ।

द्रुपदः—भवत्प्रसादेन मम सर्वमपि शुभोदर्कं भविष्यति ।

(सर्वेऽप्यन्ये भूमिपालाः परस्पराक्षिसञ्चारेण विसंवदन्ति ।)

अन्ये भूमिपालाः—(द्रुपदनरेन्द्रं प्रति)

स्त्रीवर्गरत्नस्य मृगीदृशोऽस्याः
काप्येष किं कार्पटिकः पतिः स्यात् ।
राधाऽपि न प्राग्विशिखेन भिन्ना
स्वयंवरस्तत्क्रियतां नरेन्द्र ! ॥ ४० ॥

(द्रुपदः कृष्णमुखमवलोकयति ।)

कृष्णः—भवत्वेवम् ।

द्रुपदः—हंहो प्रतीहार ! स्वयंवरमञ्चं प्रगुणयताम् । सर्वैरपि नरेन्द्रैः सह एते वयं सम्प्राप्ता एव ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

॥ प्रथमोऽङ्कः समाप्तः ॥



अथ द्वितीयोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति निजनिजमञ्चस्थितसकलभूपालचक्रपरिगतो भग वासुदेवेन सह द्रुपदः ।)

द्रुपदः—अयि प्रतीहार ! समाकारय कन्यान्तःपुराद् याज्ञसेनीम् ।

(प्रतीहारस्तथा कृत्वा द्रौपदीसहितः प्रविशति ।)

द्रौपदी—(सलज्जाकौतुकं) (क) सयलदिशागदविविह-देसविसेसकयवेसनरेसरपलोअणपल्लविदकोदुहल्लफुल्लं पि मह हिअयं लज्जाए मउलाविज्जदि ।

सखी—(ख) सहि ! का इत्थ लज्जा । अणेगसो इन्दुमदीपहुदीणं पुरावि रायकन्नाणं सयंवरो संवुत्तो ।

द्रौपदी—(ग) सहि ! एहि ताव तायं पणमामो (इति तथा करोति ।)

द्रुपदः—वत्से! वृणीष्व यदृच्छया वरम् । (इति स्वयंवर-मालाहस्ता सखीदत्तहस्तावलम्बा मञ्चान्तरपथेन परिक्रामति ।)

दुर्योधनः—(सहसा द्रौपदीमायान्तीमालोक्य सोन्मादं)

(क) सकलदिशागतविविधदेशविशेषकृतवेशनरेश्वरप्रलोकनपल्लवित-कुतूहलफुल्लमपि मम हृदयं लज्जया मुकुलायते ।

(ख) सखि ! काऽत्र लज्जा । अनेकश इन्दुमतीप्रभृतीनां पुराऽपि राजकन्यानां स्वयंवरः संवृत्तः ।

(ग) सखि ! एहि तावत्तातं प्रणमावः ।

ब्रह्मास्त्रमेषा कुसुमायुधस्य
स्त्रीवर्गसर्गे कलशं विधातुः ।
अहो ! वपुर्लोचनभङ्गसङ्ग-
लीलामधच्छत्रमिदं बिभर्त्ति ॥ १ ॥

सखी—(क) सहि ! पिच्छ पिच्छ, एस माणधणो राया दुज्जोहणो दीसदी ।

पाञ्चाली—(अवज्ञामभिनीय) (ख) अणवरयवियंभमाण-अपमाणमाणसेनकयत्थिज्जमाणमाणसेण न महं कज्जं दुज्जोहणेण ।

वैदर्भी—(ग) सहि ! चिंतिदवत्थुदाणचिंतामणिं पलोएसु चंपानयरीनाहं ।

द्रौपदी—(घ) सहि ! जणपरंपरापिसुणिदकानीनदाविडंबिदजणणेण अलं इमिणावि कन्नेण ।

मागधी—(ङ) सहि ! एस कुरुरायजुवराओ दूसासणो दीसदि ।

(क) सखि ! पश्य पश्य, एष मानधनो राजा दुर्योधनो दृश्यते ।

(ख) अनवरतविजृम्भमाणाप्रमाणमानसैन्यकृतार्थ्यमानमानसेन न मम कार्यं दुर्योधनेन ।

(ग) सखि ! चिन्तितवस्तुदानचिन्तामणिं प्रलोकय चम्पानगरीनाथम् ।

(घ) सखि ! जनपरम्परापिशुनितकानीनताविडम्बितजननेनालमनेनाऽपि कर्णेन ।

(ङ) सखि ! एष कुरुराजयुवराजो दुःशासनो दृश्यते ।

पाञ्चाली—(क) विहवजुव्वणमएण अइचंचलसहावो एस। ता पुरो गच्छामो।

(पदान्तरे)

मागधी—(ख) एस धणुव्वेयविज्जानिउणो दोणो।

पाञ्चाली—(अर्जुनमनुसन्धाय) (ग) निउणधणुकलाउवएसनिप्पादियअणेयसिस्सगणगारवियगुणस्स नमो नमो गुरुणो इमस्स।

मागधी—(कियत्परिक्रम्य) (घ) सहि! विविहबुद्धिपवंचसमाउलो कुरुनरिंदमाउलो सउणि नाम निहालिज्जदि।

पाञ्चाली— (ङ) इमस्स सद्दोऽवि सवणिंदियउव्वेयनिबंधणं। ता एहि अन्नदो गच्छामो।

शिशुपालः— (पाञ्चालीमायान्तीमालोक्य)

मृगीदृशोऽस्या वदनारविन्द-
लावण्यखर्वीकृतकान्तिगर्वः।
शङ्के शशाङ्कः श्रितशोकशङ्कु-
र्लक्ष्मच्छलेनाञ्चति डिम्बमन्तः॥ २॥

(क) विभवयौवनमदेनातिचञ्चलस्वभाव एषः। तत्पुरो गच्छावः।

(ख) एष धनुर्वेदविद्यानिपुणो द्रोणः।

(ग) निपुणधनुष्कलोपदेशनिष्पादितानेकशिष्यगणगौरवितगुणाय नमो नमो गुरवेऽस्मै।

(घ) सखि! विविधबुद्धिप्रपञ्चसमाकुलः कुरुनरेन्द्रमातुलः शकुनिर्नाम निभाल्यते।

(ङ) अस्य शब्दोऽपि श्रवणेन्द्रियोद्वेगनिबन्धनम्। तदेहि अन्यतो गच्छावः।

मागधी— (क) एस निअविक्कमक्कंतसयलभूवालो सिसुवालो।

पाञ्चाली— (ख) अलमिमिणा धम्मपरम्मुहेण ।

अर्जुनः—(आयान्तीं पाञ्चालीमालोक्य स्वगतम् ।)

ललितेषु कृतोत्कर्षा गरिष्ठगुणसङ्गिनी ।
सद्वंशप्रभवा भाति स्मरस्येव धनुर्लता ॥ ३ ॥

मागधी—(द्विजान्दर्शयन्ती) (ग) पियसहि ! इदो इदो पिच्छ, एदे राहावेहवियंभियजसपेसलपुरिसविसेससणाहा दियवरा दीसंति ।

पाञ्चाली—(सानुरागं साभिलाषं अर्जुनाभिमुखं वीक्ष्य स्वगतं सस्नेहम् ।)

(घ) अणुदिणधणुगुणकड्ढणकढिणंगुलिछलफुरंतमयणसरो ।
एयस्स करो कइया मह करकमलसङ्गहं किरही ॥ ४ ॥
जलहरगोवियदिणयरसमेण दियवेसछन्नतेएण ।
भिन्ना इमिणा राहा बाणेहि गुणेहि मह हिययं ॥ ५ ॥

(क) एष निजविक्रमाक्रान्तसकलभूपालः शिशुपालः ।

(ख) अलमनेन धर्मपराङ्मुखेन ।

(ग) प्रियसखि ! इत इतः पश्य, एते राधावेधविजृम्भितयशःपेशलपुरुषविशेषसनाथा द्विजवरा दृश्यन्ते ।

(घ) अनुदिनधनुर्गुणकर्षणकठिनाङ्गुलिच्छलस्फुरन्मदनशरः ।
एतस्य करः कदा मम करकमलसङ्गमं करिष्यति ॥ ४ ॥
जलधरगोपितदिनकरसमेन द्विजवेषच्छन्नतेजसा ।
भिन्नाऽनेन राधा बाणैर्गुणैर्मम हृदयम् ॥ ५ ॥

अर्जुनः—(स्वगतम्)

पुष्पायुधेन गुरुणा विहितोपदेशा
लोलं शरव्यमिव हन्त ! मनो मदीयम् ।
लीलाविकुञ्चितविलोचनचापलेखा-
मुक्तेन विध्यति कटाक्षशरेण कान्ता ॥ ६ ॥

पाञ्चाली—(क) गुणाणुमाणेण आयारोऽवि मणहरो इमस्स ।

मागधी—(पाञ्चालीं सानुरागां विज्ञाय किञ्चित्स्मित्वा) (ख) सहि ! अग्गदो गम्मदु ।

पाञ्चाली—(सलज्जम्) (ग) सहि ! जेण मह जणयपइण्णा-महण्णवो गरुयगुणगणेण पयंडभुअदंडतरंडेण उत्तिन्नो तस्स साहीणो अयं जणो ।

मागधी—(घ) ता गिन्हेसु नियकरकमलेन सयंवरमालियं । निवेसेहि झत्ति इमस्स कंठकंदलंमि ।

(अन्ये राजानः पाञ्चालीं द्विजसन्निधौ स्थितां दृष्ट्वा वैलक्ष्येण श्वासमुखतां भजन्ते ।)

(क) गुणानुमानेन आकारोऽपि मनोहरोऽस्य ।

(ख) सखि ! अग्रतो गम्यताम् ।

(ग) सखि ! येन मम जनकप्रतिज्ञामहार्णवो गुरुकगुणगणेन प्रचण्डभुजदण्डतरण्डेन उत्तीर्णस्तस्य स्वाधीनोऽयं जनः ।

(घ) तद् गृहाण निजकरकमलेन स्वयंवरमालिकाम् । निवेशय झगिति अस्य कण्ठकन्दले ।

द्रुपदः—अहो ! गुणानुरागिणी वत्सा ।

(पाञ्चाली अर्जुनस्य कण्ठे स्वयंवरमालां निवेशयति ।)

अर्जुनः—(स्वगतम्)

स्वीकृतेऽस्मिन्दृशाप्यङ्गे ताराभृङ्गावलीहृया ।
पुनरुक्तां निधत्तेऽसौ स्वयंवरणमालिकाम् ॥ ७ ॥

कृष्णः—

निवेशयन्ती कण्ठेऽस्य स्वयंवरणमालिकाम् ।
इयं पूजयतीवासौ वीरोत्तंसस्य वेदिका ॥ ८ ॥

(आकाशे देवा दुन्दुभिवादनपूर्वकं कुसुमवृष्टिं कुर्वन्ति ।)

कृष्णः—

राधावेधगुणेनैव क्रीता कृष्णा किरीटिना ।
अयं स्वयंवरोऽमुष्याश्चक्रे रागपरीक्षणम् ॥ ९ ॥

(द्रुपदं प्रति) किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि ।

द्रुपदः—समुचितजामातृलाभात्किमपरमपि मे प्रियमस्ति ! । तत्सर्वथा सम्पूर्णा मे मनोरथाः ।

कृष्णः—तथापीदमस्तु—

आनन्दवैभवभृतो भुवि सन्तु सन्तो
नाशं निराशमनसा पिशुनाः प्रयान्तु ।
केलिं कलेर्मुकुलयन् सकला जयश्रीः
सौभाग्यभङ्गमभितो भवतां च धर्मः ॥ १० ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ द्वितीयोऽङ्कः समाप्तः ॥

